Inspira- Journal of Modern Management & Entrepreneurship (JMME)
ISSN : 2231–167X, Impact Factor: 7.866, Volume 15, No. 02, April-June 2025, pp. 103-109

प्रारंभिक भारत में जैन शिक्षाः एक ऐतिहासिक रूपरेखा

अमृता जैन*
डॉ. संध्या शर्मा**

सार

जैन प्रणाली ने शिक्षा के अंतिम उद्देश्य के रूप में मुक्ति की सिफारिश की। जैन परंपरा के अनुसार मुक्ति दो प्रकार की होती है, जीवन मुक्ति और द्रव्य मुक्ति। इस प्रणाली में शिक्षा के सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक उद्देश्य पर जोर दिया गया। जैन शिक्षा का इतिहास मुख्य रूप से दक्षिण भारत का इतिहास है। जैनों ने कर्नाटक में शिक्षा के प्रचार और प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शुरुआत में चौत्य, बसदी और मठ धार्मिक केंद्र थे, लेकिन बाद में यह शैक्षिक केंद्रों के रूप में विकसित हुए। जैन धर्म ने मातृभाषा के माध्यम से सार्वभौमिक शिक्षा पर जोर दिया था। समय के साथ जैन धर्म ने सह–शिक्षा पर भी जोर दिया। पुरुषों और महिलाओं दोनों को मठों में रहने और जैन धर्मग्रंथों का अध्ययन करने की अनुमति थी। जैन शिक्षा को उस समय के कई शाही राजवंशों जैसे कदंब, गंग, बादामी के चालुक्य, राष्ट्रकूट और होयसल से बढ़ावा मिला।

शब्दकोशः *जैन, शिक्षा, चौत्य, बसादि, मुक्ति।*

प्रस्तावना

दक्षिण भारत में जैन धर्म का इतिहास मुख्य रूप से कर्नाटक में धर्म का इतिहास है। यह सच है कि कर्नाटक में जैन धर्म दूसरी शताब्दी की शुरुआत से लेकर चौदहवीं शताब्दी के अंत तक अधिक लोकप्रिय धर्म था। इस अवधि में विभिन्न राजवंशों के कई शासकों और उनके अधिकारियों ने इस धर्म, जैन भिक्षुओं और शैक्षिक केंद्रों का संरक्षण किया। कुप्पत्तुर के एक शिलालेख से हमें पता चलता है कि जैन धर्म पूरे कर्नाटक में फैल गया था। इस अवधि के दौरान जैनियों ने कर्नाटक में शिक्षा के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शुरुआत में चौत्यालय और बसादि धार्मिक केंद्र थे, लेकिन जल्द ही वे छात्रों को आकर्षित करने लगे और शैक्षिक केंद्र भी बन गए।

जैन शिक्षा प्रणाली की महत्वपूर्ण विशेषताएँ

जैन धर्म जाति व्यवस्था या समाज में वर्गों के किसी भी पदानुक्रम की निंदा करता है। इसलिए, जैन धर्म मातृभाषा के माध्यम से सार्वभौमिक शिक्षा में विश्वास करता था, शायद समाज में जाति व्यवस्था की निंदा का परिणाम था। जैन आचार्यों ने हमेशा शिक्षा के माध्यम के रूप में जनता की भाषा का इस्तेमाल किया। सह–शिक्षा की व्यवस्था और महिला शिक्षा अन्य महत्वपूर्ण पहलू थे।

---

* शोधार्थी, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।
** शोध निर्देशिका, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।

शिक्षा के केंद्र

मंदिर, घटिका, अग्रहार, ब्रह्मपुरी और मठ ब्राह्मण शिक्षा के केंद्र थे, वहीं चौत्यालय और जिनालय कहलाने वाले बसादी ने जैन शिक्षा प्रणाली और जैन परंपरा के केंद्रों के रूप में प्रमुख भूमिका निभाई। पहले, आचार्य किसी विशेष स्थान तक सीमित नहीं थे, बल्कि वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते थे। लेकिन बाद में जैन मुनियों और आचार्यों के लिए बसादी, मठ और आश्रम बनाए गए। वे शिक्षा के केंद्र बन गए। राजाओं, रानियों और राजपरिवारों के अन्य सदस्यों ने इन शिक्षा केंद्रों को समर्थन दिया और उनमें से कुछ बहुत प्रसिद्ध हो गए। शिलालेखों में बसदियों के लिए अलग–अलग नामों का उल्लेख है, जैसे कोयिल–बसदी, चौत्यालय, जिनालय, आदि। कई बसदियों का नाम तीर्थंकरों के नाम पर रखा गया था, उदाहरण के लिए, क्रमशः नीमिनाथ बसदी, परस्वनाथ बसदी, रायबाग, कांडगल और बेलगाम में शांतिनाथ बसदी। कभी–कभी, बसदियों का नाम बिल्डरों के नाम पर रखा गया था। श्रवणबेलगोला के 1138 ई. के एक शिलालेख में कहा गया है कि उस स्थान पर बोपन्ना द्वारा निर्मित चौत्यालय का नाम उनके नाम पर रखा गया था। इसी प्रकार, श्रवणबेलगोला में, होयसल विष्णुवर्धन की प्रमुख रानी संताला ने अपने नाम पर सवती गंधवर्ण जिनालय नाम से एक बसदी बनवाई और उन्होंने वहां पूजा करने और तपस्वियों को भोजन कराने के लिए अनुदान भी दिया। चामराजनगर के एक अन्य शिलालेख से पता चलता है कि एक निश्चित निरवैद्य ने वहां निरवैद्य जिनालय का निर्माण कराया था। चालुक्य राजा गंगा पर्मादी ने बालिगेम नागागोंडा में पर्मादी जिनालय का निर्माण कराया, निदोनी के ग्राम प्रधान ने बीजापुर जिले के निदोनी में नागगुंडा बसदी का निर्माण कराया।

ये बसदियाँ शिक्षा के महान केंद्र थे। यह बात नयसेन ने अपने धर्मामृत में जो लिखा है उससे स्पष्ट हो जाती हैय ष्राजा अरिमथन जानते थे कि अगर वे अपने बेटे को बसदी में भेजेंगे, तो वह विद्वान और बुद्धिमान बन जाएगा। ऐसे उदाहरण हैं जो दर्शाते हैं कि जैन शिक्षक न केवल बसदी में, बल्कि अपने घरों में भी शिक्षा देते थे। 730 ई. के लक्ष्मेश्वर के एक शिलालेख से यह ज्ञात होता है कि उदयदेव पंडिता ने अपने शिष्य पूज्यपाद को अपने घर पर शिक्षा दी थी, जिसके लिए चालुक्य राजा जयसिंह ने दान दिया था। वड्डाराधने में पाए गए सुकुमारस्वामी की कहानी से हमें पता चलता है कि सूर्यमित्र ने कश्यप के पुत्र अग्निभूति और वायुभूति को अपने घर में रखा और बदले में कुछ भी अपेक्षा किए बिना उन्हें शिक्षा दी। हम उसमें यह भी पाते हैं कि सूर्यमित्र एक धातु के आसन (लोहासन) पर बैठे थे और अपने शिष्यों को शिक्षा दे रहे थे, जबकि अग्निभूति और वायुभूति उनके घर गए थे। यह अपने आप में यह दिखाने के लिए पर्याप्त प्रमाण है कि जैन शिक्षकों द्वारा अपने घरों में शिक्षा दी जाती थी, ठीक वैसे ही जैसे हिंदू शिक्षकों द्वारा दी जाती थी। शिलालेखों से स्पष्ट संकेत मिलता है कि कर्नाटक के लगभग हर गाँव में जैन धर्म के रूप में एक बसदी थी। कोप्पला और श्रवणबेलगोला शिक्षा के सबसे प्रसिद्ध केंद्र थे।

शिक्षा की शुरुआत

वैदिक परंपरा के अनुसार, हिंदुओं ने दीक्षा या उपनयन संस्कार के बाद अपनी शिक्षा शुरू की। जैन छात्रों को पाँच वर्ष की आयु में या उससे थोड़ा बाद में अपना अध्ययन शुरू करना पड़ता था। शिक्षक के घर जाने से पहले, एक छात्र को जैन की पूजा करनी होती थी। पयना के ज्ञानचंद्र चरित में ज्ञानचंद्र की शिक्षा का वर्णन इस प्रकार है – पाँच वर्षों के बाद, उन्होंने जैन की पूजा की और अपने सर्वोच्च गुरु के पवित्र चरणों में बैठकर बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ सिद्धमातृका लिखना शुरू किया।

वरुशावैदगलु–जिनपूज–एयामादि वरगुरुगल समीपदोलु गुरुवनु सिद्धमात्रकेय वृद्दियोलु ता बरदानु बहुजनमे यिन्दु

जैन धर्म का अन्य कार्य धर्मनिष्ठा हमे बताता हे कि वज्रकुमार ने अपनी शिक्षा पांच वर्ष की आयु में प्रारंभकी यह उद्धरण इस प्रकार है, बामिक्कमायदु वरुशादंडु जैनोपाद्य यारा समीपदोलुदलिक्कुवुडम

शिक्षक

जैन शिक्षकों को आम तौर पर तम्मादि, ओजा, उपाध्याय, गुरुवादी, आचार्य, गोरवी भट्टारक, गुरुगलु के रूप में संदर्भित किया जाता है। शिलालेख हमें शिक्षकों के संबंध में किए गए इन संदर्भों में किसी भी अंतर को समझने में सक्षम नहीं बनाते हैं। संस्कृत में उत्तर भारतीय कार्य रायपसेनिया सुत्त, शिक्षकों को तीन श्रेणियों में विभाजित करता है, अर्थात,

- कला और विज्ञान के आचार्य कालाचार्य
- कला और वास्तुकला के आचार्य शिल्पाचार्य और
- धर्माचार्य, धर्म और धर्मशास्त्र के आचार्य

छात्र

पुरुष छात्रों को अंतेवासी, मणि, गुड्डा शिष्य, विद्यार्थी कहा जाता था। महिला छात्रों को गुड्डी शिष्य कांति या गंति कहा जाता था। जैन शिक्षक अपने छात्रों से अपेक्षा करते थे कि वे अपने घरों में उत्साह से संपन्न रहें, ज्ञान की प्यास रखें, मधुर वाणी और अच्छे आचरण वाले हों।

कक्षा की क्षमता

ऐसा लगता है कि एक शिक्षक के अधीन पढ़ने वाले छात्रों की संख्या के बारे में कोई सख्त नियम नहीं था। शिक्षक अपने साथ पढ़ाने के लिए जितने संभव हो उतने छात्रों को ले जा सकता था। एक शिक्षक के नियंत्रण में छात्रों की संख्या 28 से 300 तक होती थी। श्रवणबेलगोला से 1100 ई. के एक शिलालेख से हमें पता चलता है कि जैन शिक्षक चतुर्मुख के पास 84 छात्र थे। उसी स्थान के एक अन्य अभिलेख में उल्लेख है कि गुणनंदी पंडिता के अधीन 300 छात्र थे। छात्र तर्क, व्याकरण, साहित्य, आगम और वाद–विवाद में पारंगत थे। 1118 ई. के एक अभिलेख में उल्लेख है कि कनक श्रीकांति के पास 28 छात्र थे।

शिक्षण पद्धति

एक प्रमुख इतिहासकार एस.बी. देव ने कहा है कि जैन शिक्षण की पद्धति वैज्ञानिक थी और इसमें पाँच महत्वपूर्ण भाग शामिल थे, अर्थात। 1. वाचना (पढ़ना), 2. प्रच्छना (प्रश्न पूछना), 3. अनुप्रेक्षा (विचार करना), 4. अमहया (भाग–दर–भाग सीखना), और 5. धर्मपालसा (जनता को धर्म का उपदेश देना)।

शिक्षण के लिए वाद–विवाद और चर्चा पद्धति का भी उपयोग किया जाता था। श्रवणबेलगोला शिलालेख में अकालंका का उल्लेख है, जो एक प्रसिद्ध जैन उपदेशक थे और जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने कांची के राजा हिमसितल के दरबार में एक बौद्ध भिक्षु को विवाद में हराया था। उसी स्थान के एक अन्य शिलालेख में दर्ज है कि देवकीर्ति पंडिता ने चार्वाक, बौद्ध, नैयायिक, कापालिक और वैशेषिक और अन्य को हराया था।

शिक्षक और छात्रों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध

उत्तराध्ययन के आधार पर, एच.बी. जैन कहते हैं कि शिक्षक और छात्रों के बीच संबंध सौहार्दपूर्ण और विनम्र थे। वे आगे कहते हैं कि जिस प्रकार सवार अच्छे घोड़े को चलाने में प्रसन्न होता है, उसी प्रकार शिक्षक अच्छे शिष्य को शिक्षा देने में प्रसन्न होता है और जिस प्रकार सवार खराब घोड़े को चलाने में थक जाता है, उसी प्रकार शिक्षक मूर्ख शिष्य को ज्ञान देने में रुचि नहीं रखता। यदि शिक्षक नाराज हो, तो शिष्य का कर्तव्य था कि वह उसे अपने स्नेह से प्रसन्न करे, हाथ जोड़कर उसका सम्मान करे और भविष्य में कोई गलती न करने का आश्वासन दे। अभिलेखों में हमें अन्तेवासिन और छत्र जैसे छात्रों का उल्लेख मिलता है। इससे पता चलता है कि शिक्षक और शिष्य दोनों एक दूसरे के पास और एक ही छत के नीचे रहते थे। इससे शिक्षक और शिष्यों के बीच स्वतः ही पिता और उसके बच्चों के बीच जैसा घनिष्ठ संबंध बन गया। वड्डाराधने में, जिसका उल्लेख

पहले किया गया है, कश्यपी के पुत्र अग्निभूति और वायुभूति, सूर्यमित्र के घर में आठ वर्ष की अवधि तक रहे और सभी विषयों का अध्ययन किया। अध्ययन का पाठ्यक्रम उस काल के शिलालेख हमें जैन मठों में अध्ययन किए जाने वाले विषयों का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं देते हैं। लेकिन यह कहा जा सकता है कि जैन सिद्धांत और अन्य शास्त्रों का अध्ययन किया गया था, और तीर्थंकरों के जीवन इतिहास का भी। श्रवणबेलगोला के कई शिलालेखों में जैन भिक्षुओं का वर्णन त्रैविद्या, त्रैविद्या चूड़ामणि, त्रैविद्या–ओत्तमा, त्रैविद्याचक्रेश्वर, त्रैविद्यादेव त्रैविद्या योगीश्वर, त्रैविद्यारत्नाकर के रूप में किया गया है। उसी स्थान से 1129 ई. के एक शिलालेख में उल्लेख है कि हेमसेन त्रैविद्या यानी तर्क, व्याकरण और सिद्धांत में पारंगत थे। जैन शिक्षक मेघचंद्र भी त्रैविद्या में पारंगत थे। बी.वी. सिरूर का कहना है कि जैन मठों में पढ़ाए जाने वाले विषय न केवल धार्मिक महत्व के विषय थे, बल्कि त्रिविद्या जैसे धर्मनिरपेक्ष विषय भी थे।

व्याकरण, तर्क, जैन सिद्धांत, निघंटु, अलंकार, चंडासु, वाक्यकोस, साहित्य, कविता, शास्त्र, गणित, वैद्य, आयुर्वेद, रत्नपरीक्ष, गरुड़कोश, इंद्रजाल, महेंद्रजाल, परकाया, वड्डप्रयोग, नागेश्वर, सलिलास्तनभव, पावकास्ता, भाण–शास्त्र स्तम्भन, चरणविद्या आदि कई जैन भिक्षुओं की अत्यधिक प्रशंसा की जाती है। उनकी महान विद्वता. मरोल से 1024 ई. के एक शिलालेख में दर्ज है कि जैन शिक्षक अनंतवीरमुनि की विद्वता में व्याकरण, शब्दकोश, गणित, कामशास्त्र, खगोल विज्ञान, छंद शास्त्र, कानून, संगीत, वक्तृत्व कला, काव्य और नाटक, दर्शन, राजनीति, सिद्धांत और प्रमाण शामिल थे। श्रवणबेलगोला से 1123 ई. के एक शिलालेख में दिवाकरनंदी को व्याकरण, तर्कशास्त्र और दर्शन में उनकी महान दक्षता के कारण तीन विज्ञानों का निवास बताया गया है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उपर्युक्त विषय जैन मठों और शिक्षकों के घरों में भी पढ़ाए जाते होंगे।

सह–शिक्षा

जैन शिक्षा प्रणाली की मुख्य विशेषता सह–शिक्षा को प्रोत्साहन देना था। श्रवणबेलगोला के कई अभिलेख इस बात के प्रमाण हैं। 1047 ई. के एक शिलालेख में हम पाते हैं कि जब ष्राजा और रानियाँ, सेनापति और अन्य लोग दान देते थे, तो माना जाता था कि यह भिक्षुओं और भिक्षुणियों (ऋषियों और आर्यिकाओं) के भोजन और कपड़ों की व्यवस्था के लिए था। यहाँ यह कहा जा सकता है कि आर्यिकाओं को इस तरह का दान, महिलाओं को आगे आकर शिक्षा प्राप्त करने के लिए एक तरह का प्रोत्साहन था। 1168 ई. के एक अन्य शिलालेख में दर्ज है कि ऋषियों और आर्यिकाओं को उनके भोजन और कपड़ों के लिए सुपारी के चार सौ पेड़ों का एक उपवन, चावल के खेत का एक मटर और काली मिट्टी की तीन मटर भूमि दान की गई थी। यह दर्शाता है कि ऋषि और आर्यिका दोनों बसादियों में एक साथ अध्ययन करते थे। उस काल के अभिलेख हमें बताते हैं कि जैन शिक्षा केंद्रों में पुरुष और महिला दोनों शिक्षक थे। छात्र चाहे पुरुष हों या महिला, शिक्षकों के अधीन अध्ययन करते थे, चाहे वे पुरुष हों या महिला। श्रवणबेलगोला के शिलालेखों में उल्लेख है कि धनिकुत्तरेवी गोरवी जैसी महिला छात्राएँ पेरुमाला के अधीन अध्ययन कर रही थीं। गुरावदिगल (पेरुमाला गुरावदिगला शिष्ये धंदिकुट्टारेवी गोरवी)। अभियानंदिपंडितदेव के अधीन नानाब्बेकंती, कुमारनंदीभट्टारक के अधीन सय्यब्बेकंती, दिवाकरनंदी के अधीन श्रीमतिगंती, बालचंद्र के अधीन अचलादेवी, श्री प्रभाचंद्र सिद्धांतदेव के अधीन गंगाराज की पत्नी लक्ष्मीमती दंडनायकीति, प्रभचंद्र–मुनि के अधीन विष्णुवर्धन की रानी संतला। पुरुष छात्र महिला शिक्षकों के अधीन पढ़ते थे, उदाहरण के लिए ब्रह्मगौड़ा रात्रिमतिगंती के छात्र थे, जगमनाचारी मालियाब्बेगंती के अधीन पढ़ते थे, बिचागौड़ा मकब्बेकंती के शिष्य थे। 1118 ई. के एक शिलालेख में कहा गया है कि श्रवणबेलगोला के मठ में लगभग 28 छात्र थे, जो एक महिला शिक्षक कनकश्रीकांति के अधीन पढ़ते थे, जिसमें दोनों लिंग शामिल थे। पुरुषों और महिलाओं दोनों को मठों में रहने और जैन धर्मग्रंथों का अध्ययन करने की अनुमति थी। अनेक अभिलेखों में उल्लेख है कि गोरावर बसदी, मत्तवरदा बसदी, सोरतुरा बलदेव जिनालय, कुयिबलादा बसदी, नादिहरला हल्लिया बसदी, पुलगेरेया अनेसाज्जी बसदी, होन्नावदा त्रिभुवन तिलक जिनालय जैसी बसदियों में पुरुष और महिला दोनों छात्र एक साथ रहते थे और एक शिक्षक के अधीन अध्ययन करते थे। ये संदर्भ दर्शाते हैं कि अध्ययनाधीन काल में सह–शिक्षा प्रणाली विद्यमान थी। जैन महिला शिक्षिकाओं (कांतियों) ने शास्त्रों को

पढ़ा और आत्मसात किया था, और वही अपने शिष्यों को पढ़ाया था। शिलालेखों में इस तथ्य के संदर्भ हैं कि वे शास्त्रों से अच्छी तरह परिचित थीं। श्रवणबेलगोला के एक अभिलेख में कहा गया है कि अनंतमती कांति ने निर्धारित नियमों के अनुसार पृथ्वी पर बारह प्रकार की तपस्या की थी। उसी स्थान के एक अन्य शिलालेख में उल्लेख है कि शशिमतिगंती, जिनके पास उत्तम गुण थे, ने शास्त्रों का व्यापक अध्ययन किया था शास्त्रों में पारंगत थे। धारवाड़ जिले के सोरतुर के एक निश्चित बलदेवय्या ने वहाँ एक बसाड़ी बनवाई। श्रीनंदी पंडिता की एक महिला शिष्या हुलियाब्बज्जिके, जो संभवतः जैन शास्त्रों में पारंगत थीं, बसाड़ी की प्रमुख बनीं। उनके चरणों की पूजा करने के बाद, बलदेवय्या ने उस बसाड़ी के लिए जमीन का एक टुकड़ा दान कर दिया। दानचिंतामणि के नाम से प्रसिद्ध नागदेव की पत्नी अत्तिमाबे ने अपने खर्च पर पोन्ना के शांतिनाथपुराण की एक हजार प्रतियाँ तैयार की थीं और धर्मनिष्ठ जैनियों के बीच इसके अध्ययन की सुविधा प्रदान की थी। पंपा ने अपने आदिपुराण में एक निश्चित पंडिते का उल्लेख एक महान विद्वान के रूप में किया है। उन्होंने एक महिला छात्रा श्रीमती को पढ़ना, लिखना और चित्रकारी सिखाई और उसे एक महान विद्वान बना दिया। धर्मामृत में बाल–विधवा, नारायण दत्ते का संदर्भ है, जिन्होंने बाद में तर्कशास्त्र का अध्ययन किया और सपनुग्रह–समर्थे की उपाधि प्राप्त की। जैन मठ शिलालेख, हालांकि यदा–कदा, जैन मठों का भी उल्लेख मिलता है, जो प्राचीन और मध्यकालीन कर्नाटक में शैक्षणिक केंद्र के रूप में काम करते थे। शाही परिवार के सदस्य, सेनापति और अधिकारी इन मठों को उदारतापूर्वक दान देते थे। उदाहरण के लिए, शिकारीपुरा तालुका से 1182 ई. का कदंब राजा बोप्पदेव का एक अभिलेख हमें बताता है कि उन्होंने उसी तालुका में चिक्कमगड़ी में जैन मठ को भूमि अनुदान दिया था। 1077 ई. का एक अन्य अभिलेख बताता है कि कदंब रानी मलालादेवी ने कुप्पतुरू मठ को दान दिया था। हिंदू तपस्वियों की तरह जैन भिक्षु भी महान विद्वान थे। ऐसे कई अभिलेख हैं, जो कहते हैं कि एक मठ के भिक्षु महान विद्वान थे। 1182 ई. का मगदी का एक अभिलेख बताता है कि मुनिचंद्र, भानुकीर्ति और सिद्धान्तदेव जैसे भिक्षु वहाँ के मठ में रहते थे।

शाही संरक्षण

कर्नाटक पर कई राजवंशों का शासन रहा जैसे कदंब, गंग, बादामी के चालुक्य, राष्ट्रकूट और कल्याण के चालुक्य और होयसल। इन राजवंशों के तहत जैन धर्म को उचित मान्यता और संरक्षण मिला। यह एक लोकप्रिय धर्म था कर्नाटक में, श्रवणबेलगोला, कोप्पला, मन्नेकेटा, हुमचा जैन धर्म और कला के महान केंद्रों के रूप में उभरे। अध्ययन के तहत शिलालेख हमें शासक परिवारों के सदस्यों और उनके अधिकारियों द्वारा जैन बसादियों को उपहार देने के कई उदाहरण प्रदान करते हैं। शुरुआती कदंबों के शिलालेखों से हमें पता चलता है कि जैन लोग वर्षा ऋतु के दौरान एक स्थान पर रहते थे, जिसके अंत में वे शास्त्रों में बताए गए प्रसिद्ध पज्जुषण समारोह का आयोजन करते थे। विजय शिव मृगेशवर्मा के देवगिरि प्लेटों में कलवनागा गाँव के तीन भागों में विभाजन का उल्लेख है, प्रत्येक भाग पवित्र अर्हत, भगवान जिनेंद्र की पूजा और श्वेतपता और निर्ग्रन्थ संप्रदायों के तपस्वियों के भरण–पोषण के लिए बनाया गया था। उसी राजा की हालसी प्लेटों में दर्ज है कि अपने मृत पिता के पुण्य प्राप्ति के लिए मृगेशवर्मा ने पलाशिका में एक जिनालय बनवाया और 33 निवर्तन भूमि दान में दी। बाद में राजा रविवर्मा ने उसी स्थान पर पूर्णिमा के दिन भगवान जिन के अभिषेक के लिए 15 निवर्तन भूमि का अनुदान दिया। हरिवर्मा की हालसी प्लेटों में उस स्थान के संघ और जैन भिक्षुओं को भूमि का अनुदान दर्ज है। गंग शासन जैनियों के लिए स्वर्ण युग था उदाहरण के लिए, 909 ईसवी दिनांकित मालवल्ली के एक अभिलेख में लिखा है कि राजा नीतिमर्ग ने तिप्पेयुर के कनकगिरि तीर्थ में जालना बसदी का विस्तार करने के उद्देश्य से भेड़ों और अन्य वस्तुओं पर कर माफ कर दिया था। एक अन्य गंग राजा मारसिम्हा ने एक जैन बसदी का निर्माण कराया और कुडलुर में धार्मिक व्यक्तियों और मंदिरों को दान दिया। उन्होंने बागेयुर नाम का एक गाँव दिया और एक महान जैन शिक्षक वदिघंघला या मुंजार्या को बारह खंडाग अनाज उपहार में दिया। उन्होंने जयदेव नामक एक जैन पुजारी को भी अनुदान दिया। इसका उल्लेख 968 ईसवी दिनांकित लक्ष्मेश्वर शिलालेख में है। गंग राजा राजमल्ल जैन धर्म के महान संरक्षक थे। उनके मंत्री चावुंडाराय ने श्रवणबेलगोला में

गोमाता की विशाल मूर्ति की स्थापना का कार्य किया था। बादामी के चालुक्य, हालांकि हिंदू धर्म से संबंधित थे, जैन धर्म का समर्थन करने में पीछे नहीं रहे। प्रसिद्ध ऐहोल प्रशस्ति के लेखक जैन कवि रविकीर्ति को महान चालुक्य सम्राट पुलकेशी द्वितीय से सबसे अधिक समर्थन प्राप्त हुआ। उन्होंने एक जैन मंदिर का निर्माण कराया, जिसे अब मेगुति मंदिर के रूप में जाना जाता है। राजा विनयदित्य ने एक जैन पुजारी को पचास मठ भूमि दान की, जो मूलसंघ और देवगण से संबंधित थे। विजयदित्य के लक्ष्मेश्वर शिलालेख में लिखा है कि राजा ने पुलगेरी के दक्षिण में कर्दम गांव अपने पिता के पुजारी उदयदेव पंडित को दान कर दिया, जो श्री पूज्यपाद के निवासी शिष्य थे। विजयदित्य के 707 ई. के शिगगांव प्लेट में लिखा है कि राजा ने चित्रवाहन के अनुरोध पर जैन मठ को अनुदान दिया, जिसका निर्माण पुलगेरे में कुमकुममहादेवी द्वारा करवाया गया था। राष्ट्रकूटों के अधीन जैन धर्म अपने चरम पर पहुंच गया, खास तौर पर अमोघवर्ष के अधीन, दंतिदुर्ग, खड्गवलोक, वैरामेघ ने अकालंकदेव को सम्मानित किया, जो जैन इतिहास के सबसे महान व्यक्तियों में से एक थे। आदिपुराण के लेखक जिनसेन का दावा है कि वे अमोघवर्ष के मुख्य गुरु थे। उन्होंने राष्ट्रकूट राजा को धर्म के उपदेशों के अनुसार स्याद्वाद का अनुयायी बताया। अमोघवर्ष ने प्रश्नोत्तरमालिका लिखी जिसमें जैन दर्शन शामिल था। 950 ई. के नरेगल के एक अन्य शिलालेख में दान–शाला को एक तालाब उपहार में दिए जाने का उल्लेख है, जो पद्माबरसी नामक रानी द्वारा बनवाई गई बसाड़ी से जुड़ा हुआ था। एक अन्य अभिलेख में कहा गया है कि जैन मठों के लिए भोजन और दवाइयाँ उपलब्ध कराई जाती थीं जहाँ जैन धर्मग्रंथ पढ़ाए जाते थे। देज्जा महाराजा के गोकक प्लेटों में दिव्य अर्हत की पूजा और शिक्षण के लिए समर्पित विद्वान तपस्वियों के भरण–पोषण के लिए जलारा गांव में भूमि का दान दर्ज है। कल्याण के चालुक्यों ने बड़े पैमाने पर शैव धर्म का समर्थन किया और शैव मंदिरों का निर्माण किया, उन्होंने जैन बसादियों को भी अनुदान दिया। 1047 ई. के एक शिलालेख में अक्कादेवी का उल्लेख है, जो जयसिंह द्वितीय की बहन थीं, जो जैन धर्म के संरक्षक थे, उन्होंने अपने नाम को एक जैन मंदिर के साथ जोड़ने की अनुमति दी, जिसे गुनादाबेदांगी जिनालय कहा जाता है। उन्होंने वहां के धार्मिक प्रतिष्ठान से जुड़े जैन भिक्षुओं और भिक्षुणियों के भरण–पोषण के लिए भूमि का दान दिया। बीजापुर जिले के होनवाड़ा से 1045 ई. के एक अभिलेख से हमें पता चलता है कि सोमेश्वर प्रथम की रानी केतलादेवी, होनवाड़ा अग्रहार के प्रशासन की प्रभारी थीं।केतलदेवी के अनुरोध पर, राजा ने त्रिभुवन–तिलक चौत्यालय के लिए भूमि और घर की जगह दी, जहाँ भिक्षु और भिक्षुणियाँ रहा करती थीं। सेनापति गंगाराज की पत्नी लक्ष्मी या लक्कले ने श्रवणबेलगोला में एक नया जिनालय बनवाया और वहाँ पढ़ाने और सीखने वालों के लिए भोजन, आश्रय, दवा का उपहार दिया। बेलगाम जिले के कलहोली से 1127 ई. का एक और शिलालेख हमें बताता है कि रत्ता राजा कार्तवीर्य के कहने पर, सिंदना–कालपोल में हाल ही में बने एक जैन मंदिर को कुछ अनुदान दिए गए थे। इस अनुदान का उद्देश्य वहाँ रहने वाले पवित्र लोगों के लिए भोजन, दवाइयाँ और पवित्र शास्त्रों की शिक्षा प्रदान करना था, साथ ही मंदिर की मरम्मत भी करना था। बीजापुर जिले के तेराडाला से 1124 ई. का एक और अभिलेख बताता है कि गोंका ने नेमिनाथ को समर्पित एक जैन मंदिर का निर्माण करवाया था और इसके रखरखाव तथा जैन भिक्षुओं के भोजन के लिए भूमि का अनुदान दिया था। 1129 ई. के एक शिलालेख में दर्ज है कि गंडविमुक्त सिद्धांतदेव की एक महिला शिष्या हरियाब्बरसी ने कोडंगी नाडु में मालेवाडी के हंतियुर में गोपुरों के साथ एक भव्य चौत्यालय बनवाया था, तथा दैनिक पूजा, ऋषियों और वृद्ध महिलाओं को भोजन वितरित करने तथा सर्दियों के दौरान आश्रय प्रदान करने के लिए इसे अनुदान दिया था। धुल्ला की पुत्रवधू तथा नागदेव की पत्नी अत्तिमाबे जैन धर्म के इतिहास में एक प्रसिद्ध नाम है। वह उदार अनुदान देने के लिए जानी जाती थी और उसके बाद उसे दानचिंतामणि कहा जाने लगा। उसने लोककिगुंडी में एक बहुत बड़ी बसाड़ी सहित कई बसाड़ियों का निर्माण करवाया। उन्होंने अपने खर्च पर पोन्ना की शांतिपुराण की 1,000 प्रतियां बनवाईं और उन्हें जनता के बीच वितरित किया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. दासगुप्ता डीसी. जैन शिक्षा प्रणाली, कैल. 1942, 74–75.
2. 1924 के लिए मैसूर पुरातत्व रिपोर्ट, 14.
3. अल्टेकर ए.एस. राष्ट्रकूट, 88–89.
4. सालेतोरे बी.ए., 156.
5. जैन एच.बी. प्राचीन भारत में जैन शिक्षा, 270.
6. समाशास्त्री आर धर्मामृतम, 25.
7. जेबीबीआरएएस, एक्स, 229, 1127 ई.
8. संतरा शास्त्री ए. पायनवर्णीय ज्ञानचंद्र चरित 3, 170.
9. कर्नाटक भारती, 2.
10. समाशास्त्री, आर, धर्मामृतम, 50.
11. दक्षिण भारतीय शिलालेख, 11(1), 6.
12. सालेटोर बी. ए. मध्यकालीन जैन धर्म, बॉम्बे 1938, 2.

♦❐♦